किरातार्जुनीयम् के श्लोकों का अनुवाद (1 से 11 तक)

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी,

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं

प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।

स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ

युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः।।

कुरुजाङ्गल प्रदेश के अधिपति (दुर्योधन) की साम्राज्यलक्ष्मी के प्रजाविषयक कल्याणात्मक व्यापार को हृदयङ्गम करने के लिए (धर्मराज युधिष्ठिर ने) जिसे नियुक्त किया था, ब्रह्मचारी वेश वाला (एवं समस्त शत्रुविषयक) वृत्तान्तों का ज्ञाता वह वनेचर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास आया।

कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे

जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।

न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं

प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः।।

प्रणामक्रिया से निवृत्त (तथा) शत्रु (दुर्योधन) द्वारा जीत ली गई पृथ्वी (के वृत्तान्त) को महाराज युधिष्ठिर के प्रति निवेदित करते हुये उस वनेचर का मन व्यथित नहीं हुआ, क्योंकि कल्याण चाहने वाले (स्वपक्षीय) लोग मिथ्याभूत मधुर वचन बोलने की इच्छा नहीं करते हैं।

द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो

रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः।

स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं

विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे।।

(दुर्योधनप्रभृति) शत्रुजनों का विनाश करने के लिये प्रयत्नाभिलाषी महाराज (युधिष्ठिर) की अनुमति प्राप्त करके उस वनेचर ने एकान्त में, सौष्ठव (शब्द-सौन्दर्य) एवं औदार्य (अर्थ-गौरव) के वैशिष्ट्य से समलङ्कृत तथा विनिश्चित (प्रामाणिक) अर्थ वाले इस प्रकार के वचन कहे।

क्रियासु युक्तैर्नृप! चारचक्षुषो

न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।

अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।।

हे राजन्! करणीय कार्यों में (स्वामी द्वारा) नियुक्त किये गये सेवकों को चाहिये कि वे गुप्तचर रूपी नेत्रों वाले अर्थात् सर्वात्मना गुप्तचरों पर समाश्रित (समर्थ) प्रभुओं को प्रवञ्चना न दें। अतएव मेरे अप्रिय अथवा प्रिय कथन को आप सहन करें (क्योंकि) हितकारिणी, साथ ही साथ मनोहर (भी) वाणी दुर्लभ होती है।

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं

हितान्न यः संशृणुते स किम्प्रभुः।

सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं

नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।।

जो राजा को समुचित उपदेश नहीं देता है क्या वह मित्र है? (कभी नहीं) अथवा वह किंसखा = कुत्सित मित्र है। (इसी प्रकार) जो शुभाकांक्षी व्यक्ति से (सदुपदेश) नहीं सुनता है क्या वह प्रभु है? (कभी नहीं) अथवा वह किंप्रभु = निन्दनीय नरेश है। क्योंकि राजाओं तथा सचिवों के परस्पर अनुकूल रहने पर ही समग्र सम्पत्तियाँ सदैव अनुराग करती हैं (अन्यथा नहीं)।

निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवाः

क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः?

तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया

निगूढतत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम्।।

(हे स्वामिन्) स्वभावतः अत्यन्त कष्टपूर्वक समझ में आ सकने वाला कहाँ (तो) राजाओं का चरित और कहाँ अज्ञान के कारण विकलीभूत (मुझ जैसे) पामर जीव! (फिर भी) गुप्त तत्त्वों वाले, शत्रुओं के नीतिमार्ग को जो मैंने जान लिया, वह आप (ही) का प्रभाव है।

विशङ्कमानो भवतः पराभवं

नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः।

दुरोदरच्छद्मजितां समीहते

नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः।।

सिंहासनासीन होते हुए भी (वह) सुयोधन, वनवासाश्रयी (अतएव विपन्न) आपसे (अपनी) पराजय की आशङ्का करता हुआ द्यूतक्रीडा के बहाने जीती गई पृथ्वी को (अब) नीति से जीतना चाह रहा है।

तथामि जिह्मः स भवज्जिगीषया

तनोति शुभ्रं गुणसम्पदा यशः।

समुन्नयन्भूतिमनार्यसङ्गमाद्

वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।।

फिर भी (अर्थात् विशङ्कित होते हुए भी) कुटिल प्रवृत्तिवाला वह (दुर्योधन) आपको जीत लेने की लालसावश (अपनी दानदाक्षिण्यादि) गुणसम्पत्ति से धवल कीर्ति का विस्तार कर रहा है। ऐश्वर्य का अभ्युत्थान करने वाला, महापुरुषों के साथ किया गया विरोधभाव भी दुष्टों के संसर्ग की अपेक्षा अच्छा है।

कृतारिषडवर्गजयेन मानवी-

मगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना।

विभज्य नक्तन्दिवमस्ततन्द्रिणा

वितन्यते तेन नयेन पौरुषम्।।

(कामक्रोधादि) अन्तः शत्रुओं के षड्वर्ग पर विजय प्राप्त करने वाले, अगम्य रूपवाली-मनूपदिष्ट प्रजापालन-पद्धति को चरितार्थ करने की आकांक्षा वाले (अतएव) आलस्यविहीन अर्थात् उत्साहसम्पन्न उस दुर्योधन द्वारा (कार्योचित) समय का विभाजन करके, नीतिपूर्वक पुरुषार्थ का विस्तार किया जा रहा है।

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः

समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।

स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः

कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम्।।

अभिमान से रहित वह (दुर्योधन) सदैव निष्कपट भाव से अनुचरों को स्निग्ध मित्रों की भाँति, मित्रों को सहोदरों के समान आदरपात्र और बन्धुओं को (अपने) अधिपतियों के समान सम्भावित किया करता है।

असक्तमाराधयतो यथायथं

विभज्य भक्त्या समपक्षपातया।

गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान्

न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्।।

यथोचित रूप से विवेचन करके, समान पक्षपातयुक्त अनुरागभाव से, बिना (किसी) आसक्ति के सेवन करते हुए इस दुर्योधन के (धर्म, अर्थ एवं काम के) त्रिवर्ग परस्पर विरोध नहीं करते हैं, मानो दुर्योधन के गुणों पर लुब्ध होकर वे परस्पर मित्रता को प्राप्त हो गए हों।